[2024] 12 एस.सी.आर. 1884 : 2024 आईएनएससी 1021

मल्लव्वा एवं अन्य

बनाम

कलसम्मनवरा कलम्मा (मृत) उनके विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा एवं अन्य

(सिविल अपील सं. 14803/2024)

20 दिसंबर 2024

[जे.बी. पारदीवाला* तथा आर. महादेवन, न्यायमूर्ति]

विचारणीय मुद्दा

क्या वादियों द्वारा दायर मूल वाद, प्रथम अपील के चरण में वादपत्र में संशोधन कर वाद संपत्ति के कब्जे की मांग करने के पश्चात भी, कालबाधित कहा जा सकता है? दूसरे शब्दों में, क्या वाद पर परिसीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 58 लागू होगा या अनुच्छेद 65?

शीर्ष टिप्पणियाँ†

परिसीमा अधिनियम, 1963 - अनुच्छेद 58 एवं अनुच्छेद 65 - मूल वादी-के द्वारा वाद संपत्ति के संबंध में घोषणा एवं निषेधाज्ञा के लिए वाद दायर किया गया - विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज करते हुए यह माना कि वादी वाद अनुसूची संपत्तियों के पूर्ण स्वामी हैं - मूल वादी के विधिक उत्तराधिकारियों ने प्रथम अपील दायर की, जिसमें वादपत्र में संशोधन कर वाद संपत्ति के कब्जे की मांग जोड़ी गई - प्रथम अपीलीय न्यायालय ने संशोधन आवेदन स्वीकार किया तथा विचारण न्यायालय के निर्णय एवं आदेश को पलट दिया - अपीलकर्ताओं-प्रतिवादियों द्वारा द्वितीय अपील दायर की गई, जिसे खारिज कर दिया गया - सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ताओं का यह तर्क था कि वाद परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 के अधीन होगा और कालबाधित होने के कारण खारिज किया जाना चाहिए:

अभिनिर्धारित किया गया कि: जहाँ तक संपत्ति के शीर्षक का संबंध है, वादी यह स्थापित करने में सफल रही कि वह वाद अनुसूची संपत्तियों की पूर्ण स्वामिनी थी - मूल वादी के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा दायर प्रथम अपील में वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी गई और प्रतिवादियों से कब्जा प्राप्त करने की प्रार्थना जोड़ी गई - यह सत्य है कि शीर्षक एवं स्वामित्व के निष्कर्षों के संबंध में प्रतिवादियों ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रतिवेदन दायर

* लेखक

किए थे, जिन्हें विचार कर खारिज कर दिया गया - यह विधि द्वारा स्थापित है कि प्रक्रिया के नियम न्याय के प्रशासन में सहायक होते हैं - केवल किसी त्रुटि, लापरवाही, असावधानी अथवा प्रक्रिया नियमों के उल्लंघन के कारण किसी पक्ष को न्यायोचित राहत से वंचित नहीं किया जा सकता - न्यायालय सदैव वादपत्र में संशोधन की अनुमति देता है, जब तक कि यह संतुष्ट न हो कि पक्षकार दुर्भावना से कार्य कर रहा था या उसके द्वारा की गई भूल से प्रतिपक्ष को ऐसी क्षति हुई है जिसकी क्षतिपूर्ति लागत के आदेश द्वारा नहीं की जा सकती - तथापि, यदि संशोधन के आधार पर नया वाद दायर किया जाता और वह संशोधन आवेदन की तिथि पर ही परिसीमा से बाधित होता, तो न्यायालय को संशोधन अस्वीकार करना चाहिए - अनुच्छेद 65 अचल संपत्ति या उसमें किसी हित के कब्जे हेतु शीर्षक आधारित वाद का वर्णन करता है - परिसीमा की अवधि उस समय से प्रारंभ होती है जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो जाता है - जब वाद शीर्षक के आधार पर कब्जे के लिए होता है, तो एक बार शीर्षक स्थापित हो जाने पर, जब तक प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जा निर्धारित अवधि तक सिद्ध नहीं कर देता, वादी को वंचित नहीं किया जा सकता - सी. मोहम्मद यूनुस बनाम सैयद उन्निसा में यह कहा गया कि घोषणा के साथ अतिरिक्त राहत वाले वाद में परिसीमा उस अतिरिक्त राहत को नियंत्रित करने वाले अनुच्छेद द्वारा निर्धारित होगी - वास्तव में अचल संपत्ति के शीर्षक की घोषणा हेतु वाद तब तक परिसीमा से बाधित नहीं होगा जब तक उस संपत्ति पर अधिकार विद्यमान एवं अस्तित्व में है - जब तक ऐसा अधिकार बना रहता है, घोषणा का अधिकार निरंतर बना रहता है और ऐसे वाद पर कोई परिसीमा लागू नहीं होती - सिद्धांत यह है कि जब तक संपत्ति का अधिकार विद्यमान है, तब तक उस अधिकार की घोषणा हेतु वाद को कालबाधित नहीं कहा जा सकता। [अनुच्छेद 9, 23, 29, 31, 32]

उद्धृत निर्णयजन्य विधि

पंडित ईश्वरदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य **(1979) 4 एससीसी 163;** *संपत कुमार बनाम अय्याकन्नु एवं अन्य* **[2002] सप्ली. 2 एससीआर 397 : (2002) 7 एससीसी 559;** *सिद्धलिंगम्मा एवं अन्य बनाम ममता शेनॉय* **[2001] सप्ली. 4 एससीआर 366 : (2001) 8 एससीसी 561;** *रेवाजीतु बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड सन्स एवं अन्य* **[2009] 15 एससीआर 103 : (2009) 10 एससीसी 84 - पर निर्भर किया गया।**

खत्री होटल्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य **[2011] 15 एससीआर 299 : (2011) 9 एससीसी 126;** *राजपाल सिंह बनाम सरोज (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के*

माध्यम से एवं अन्य **[2022] 19 एससीआर 202 : (2022) 15 एससीसी 260 - अनुपयुक्त माना गया।**

महिला रामकली देवी बनाम नंदराम (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से **[2015] 4 एससीआर 974 : (2015) 13 एससीसी 132;** *जय जय राम मनोहर लाल बनाम नेशनल बिल्डिंग मटेरियल सप्लाई, गुड़गांव* **[1970] 1 एससीआर 22 : (1969) 1 एससीसी 869;** *इंदिरा बनाम अरुमुगम एवं अन्य* **(1998) 1 एससीसी 614;** *केरल राज्य एवं अन्य बनाम जोसेफ एवं अन्य* **[2023] 11 एससीआर 264 : 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 961 - का संदर्भ दिया गया।**

अधिनियमों की सूची

परिसीमा अधिनियम, 1908; परिसीमा अधिनियम, 1963.

प्रमुख शब्दों की सूची

वाद; घोषणा के साथ अतिरिक्त राहत; वादपत्र का संशोधन; कब्जा प्राप्ति; परिसीमा; कब्जे हेतु शीर्षक; प्रतिकूल कब्जा; अचल संपत्ति के शीर्षक की घोषणा; संशोधन हेतु आवेदन।

मामले की उत्पत्ति

सिविल अपीलीय अधिकारिता: सिविल अपील संख्या 14803/2024

कर्नाटक उच्च न्यायालय, धारवाड़ सर्किट पीठ द्वारा आर.एस.ए. संख्या 100071/2019 में दिनांक 13.06.2019 को पारित निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न

अधिवक्तागण

एस. एन. भट्ट, वरिष्ठ अधिवक्ता, डी. पी. चतुर्वेदी, तरुण कुमार ठाकुर, श्रीमती पार्वती भट्ट, विवेक राम आर., अभय चौधरी एम., सुश्री अनुराधा मुततकर, अधिवक्ता - अपीलकर्ताओं के लिए।

राजेश महाले, वरिष्ठ अधिवक्ता, परीक्षित मलिये, अनिरुद्ध गुप्ता, हरिशा एस.आर., अधिवक्ता - प्रतिवादियों के लिए।

मल्लव्वा और अन्य बनाम

कलसमनवरा कलम्मा (मृत) - विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से, और अन्य

सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय/आदेश

निर्णय

जे.बी. पारदीवाला, न्यायमूर्ति

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. यह अपील कर्नाटक उच्च न्यायालय, धारवाड़ पीठ द्वारा दिनांक 13.06.2019 को नियमित द्वितीय अपील सं. 100071/2019 में पारित निर्णय एवं आदेश से उत्पन्न होती है, जिसके द्वारा अपीलकर्ताओं (मूल प्रतिवादी) द्वारा दायर द्वितीय अपील को खारिज कर दिया गया तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं आदेश की पुष्टि की गई, जिसमें प्रतिवादियों (मूल वादियों) द्वारा दायर अपील स्वीकार कर शीर्षक की घोषणा एवं कब्जे के लिए वाद डिक्री किया गया।

3. इस अपील को जन्म देने वाले तथ्य संक्षेप में निम्नानुसार हैं:

   a. सुविधा की दृष्टि से, अपीलकर्ताओं को मूल प्रतिवादी तथा प्रतिवादियों को मूल वादी के रूप में संदर्भित किया जाएगा।

   b. मूल वादी स्व. कलसम्मनवरा कलम्मा ने सिविल न्यायाधीश एवं जेएफएमसी, हडगली के न्यायालय में मूल वाद सं. 67/2011 दायर किया, जिसमें वाद संपत्ति के संबंध में घोषणा एवं निषेधाज्ञा की राहत मांगी गई। उक्त वाद में विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित मुद्दे निर्धारित किए:

> *"1. क्या वादी यह सिद्ध करती है कि वह वाद संपत्तियों की पूर्ण स्वामिनी एवं कब्जाधारी है?*
>
> *2. क्या वादी यह सिद्ध करती है कि वह कलसम्मनवर परिवार से संबंधित है तथा उसके पूर्वज चिन्मयप्पा एवं मल्लप्पा सगे भाई थे?*
>
> *3. क्या वादी यह सिद्ध करती है कि प्रतिवादी वादी के शांतिपूर्ण कब्जे एवं उपभोग में हस्तक्षेप कर रहे हैं?*
>
> *4. क्या प्रतिवादी यह सिद्ध करते हैं कि जमानी मल्लव्वा ने वाद संपत्तियों के संबंध में प्रतिवादी सं. 2 के नाम खाता परिवर्तन के लिए सहमति दी थी?*

5. क्या प्रतिवादी यह सिद्ध करते हैं कि वादी द्वारा कब्जे की राहत मांगे बिना वाद ग्राह्य नहीं है?

6. क्या प्रतिवादी यह सिद्ध करते हैं कि वे वाद अनुसूची संपत्तियों के विधिक कब्जे एवं उपभोग में हैं?

7. क्या प्रतिवादी यह सिद्ध करते हैं कि वादी द्वारा दिया गया न्यायालय शुल्क अपर्याप्त है?

8. क्या वादी मांगी गई राहत की अधिकारी है?

9. क्या आदेश या डिक्री?"

c. विचारण न्यायालय ने उपर्युक्त मुद्दा सं. 1 का उत्तर आंशिक रूप से सकारात्मक में दिया तथा मुद्दा सं. 2, 4, 5 और 6 का उत्तर क्रमशः सकारात्मक में दिया। मुद्दा सं. 3 और 7 का उत्तर क्रमशः नकारात्मक में दिया गया। विचारण न्यायालय ने तदनुसार वाद को 5,000 रुपये की लागत सहित खारिज कर दिया।

d. मूल वादी प्रथम अपील दायर करने से पूर्व ही निधन हो गया।

उपरोक्त परिस्थितियों में, उसके विधिक उत्तराधिकारी, अर्थात वर्तमान प्रतिवादीगण, ने वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश, हूविना हडगली के न्यायालय में नियमित प्रथम अपील सं. 80/2018 दायर की, जिसमें मूल वाद सं. 67/2011 में विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री को चुनौती दी गई।

e. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने निम्नलिखित निर्धारण बिंदु निर्धारित किए:

"1. क्या अपीलकर्ता/वादी यह सिद्ध करते हैं कि वे कलसम्मनवरा परिवार से संबंधित हैं और इस प्रकार उत्तराधिकार के आधार पर वाद संपत्ति के पूर्ण स्वामी बन गए?

2. क्या विवादित निर्णय एवं डिक्री मनमाना, त्रुटिपूर्ण, अवैध है तथा इस न्यायालय के हस्तक्षेप की अपेक्षा करता है?

3. क्या वादी का दावा परिसीमा विधि द्वारा बाधित है?"

f. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने उपर्युक्त निर्धारण बिंदुओं का उत्तर इस प्रकार दिया:

"बिंदु सं. 1: सकारात्मक में,

बिंदु सं. 2: आंशिक रूप से सकारात्मक में,

बिंदु सं. 3: नकारात्मक में,

बिंदु सं. 4: अंतिम आदेशानुसार..."

g. यह उल्लेखनीय है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष वर्तमान अपीलकर्ताओं ने प्रतिवादी के रूप में विचारण न्यायालय द्वारा मुद्दा सं. 1 और 2 पर दिए गए निष्कर्षों को चुनौती देते हुए प्रतिवेदन दायर किया था।

h. यह भी प्रतीत होता है कि मूल वादी के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा दायर प्रथम अपील में वादपत्र में संशोधन हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया गया, जिसमें वादियों ने वाद संपत्ति के कब्जे की प्रार्थना की। उक्त संशोधन आवेदन को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वीकार कर लिया गया तथा वादपत्र में तदनुसार संशोधन किया गया।

i. प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा संशोधन आवेदन स्वीकार करने का आदेश इस प्रकार है:

> *"11. विचारण न्यायालय के निष्कर्षों के अनुसार, वादी वाद संपतियों की पूर्ण स्वामिनी है। प्रतिवादियों ने उक्त निष्कर्ष को चुनौती देते हुए प्रतिआपील दायर की है। तथापि, विचारण न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वादी वाद संपतियों के कब्जे में नहीं है, इसी कारण वाद खारिज किया गया। परंतु वादी के विधिक उत्तराधिकारी अभी भी यह दावा कर रहे हैं कि वे वाद संपत्तियों के कब्जे में हैं। साथ ही वे वैकल्पिक प्रार्थना के रूप में कब्जे की मांग हेतु वादपत्र में संशोधन करना चाहते हैं। चूँकि कब्जा पक्षकारों के मध्य विवादित तथ्य है, अतः इसका निर्धारण अंतिम तर्कों के समय किया जाना है। प्रस्तावित संशोधन केवल कब्जे की वैकल्पिक राहत से संबंधित है, जिसकी पात्रता संबंधित तथ्यों के प्रमाण पर निर्भर करेगी। यदि वादी के विधिक उत्तराधिकारी कब्जा सिद्ध कर देते हैं, तो कब्जे की मांग आवश्यक नहीं होगी। अन्यथा, यदि वे कब्जा सिद्ध करने में विफल रहते हैं, तो विधि के स्थापित सिद्धांत के अनुसार बिना कब्जे की मांग के घोषणा*

का वाद ग्राह्य नहीं होता। अतः प्रस्तावित संशोधन पक्षकारों के मध्य वास्तविक विवाद के समाधान हेतु उचित एवं आवश्यक है।

12. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि अपील कार्यवाही का निरंतरता है और अपीलीय न्यायालय के समक्ष भी पक्षकार अपने वादपत्र में संशोधन कर सकते हैं, बशर्ते तथ्यों का प्रमाण प्रस्तुत किया जाए। इस संदर्भ में कर्नाटक उच्च न्यायालय के निर्णय पुट्टामरम्मा बनाम गिरियप्पा एवं अन्य (2016 केसीसीआर (1) 73) का उल्लेख उपयुक्त है, जिसमें यह प्रतिपादित किया गया कि अपीलीय न्यायालय को मूल न्यायालय के समान अधिकार प्राप्त होते हैं तथा वह आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के अंतर्गत संशोधन आवेदन पर विचार कर सकता है।

> *"17. अपील मूल कार्यवाही का ही विस्तार होती है और अपीलीय न्यायालय को वह सभी शक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो विचारण न्यायालय को प्राप्त होती हैं, अतः स्वाभाविक रूप से उसके पास आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के अंतर्गत दायर आवेदन पर विचार करने की शक्ति भी होगी। यह नहीं कहा जा सकता कि आदेश 6 नियम 17 सीपीसी के उपबंध के आधार पर अपीलीय न्यायालय की संशोधन आवेदन स्वीकार करने की शक्ति सीमित हो जाती है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है, जैसा कि ऊपर पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है। अपील मूल वाद की निरंतरता होने के कारण यह सुरक्षित रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रथम अपीलीय न्यायालय को वही शक्तियाँ प्राप्त हैं जो मूल अधिकारिता वाले न्यायालय को प्राप्त होती हैं। सीपीसी की धारा 107 की उपधारा (2) में प्रयुक्त भाषा स्पष्ट, निर्विवाद एवं प्रत्यक्ष है, जो यह दर्शाती है कि अपीलीय न्यायालय को वही शक्तियाँ प्राप्त होंगी और वह यथासंभव वही कर्तव्य निभाएगा जो संहिता द्वारा मूल अधिकारिता वाले न्यायालयों को उन वादों के संबंध में प्रदान एवं आरोपित किए गए हैं, जो उनके समक्ष संस्थापित किए गए हैं।"*

माननीय उच्च न्यायालय के उक्त सिद्धांत के दृष्टिगत, प्रथम अपीलीय न्यायालय कार्यवाही की निरंतरता होने के कारण सीपीसी के आदेश 6 नियम 17 के अंतर्गत अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है। अतः उपर्युक्त विस्तृत चर्चा के अनुसार आई.ए. को स्वीकार किया जाना उचित था। तदनुसार, बिंदु संख्या 1 का उत्तर सकारात्मक में दिया जाता है।

*13. **बिंदु संख्या 2:-** उपर्युक्त कारणों एवं चर्चा के आधार पर, मैं निम्नलिखित आदेश पारित करता हूँ।*

<u>आदेश</u>

आदेश 6 नियम 17 सहपठित धारा 151 सी.पी.सी के अंतर्गत आई.ए. सं. II स्वीकार की जाती है।

अपीलकर्ताओं को वादपत्र संशोधित करने की अनुमति दी जाती है तथा उन्हें निर्देशित किया जाता है कि 7 दिनों के भीतर संशोधित वादपत्र प्रस्तुत करें।

लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।"

j. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय एवं आदेश को पलटते हुए वादियों द्वारा दायर प्रथम अपील को स्वीकार कर लिया। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने प्रथम अपील स्वीकार करते समय निम्नलिखित अवलोकन किया:

"40. प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि प्रतिवादियों ने वादपत्र में संशोधन करवा लिया है तथा यह भी कहा है कि वादी तथा उसके विधिक उत्तराधिकारियों का वाद सीमा विधि के अधीन बाधित है, क्योंकि वे निर्धारित सीमा अवधि समाप्त होने के बाद न्यायालय के समक्ष आए हैं। आगे प्रतिवादियों के अधिवक्ता ने यह भी तर्क दिया है कि चूँकि वाद घोषणा के प्रतिकर हेतु है, अतः वादी को कारण उत्पन्न होने की तिथि से तीन वर्ष के भीतर वाद दायर करना चाहिए था। <u>अब वे कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर मांग रहे हैं। वादी को बेदखली की तिथि से 12 वर्ष के भीतर वाद दायर करना चाहिए। यहाँ</u>

तक कि 1981 से आरटीसी अभिलेखों को देखने पर भी यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी वाद संपत्ति के कब्जे में हैं, अतः वादी का पूरा दावा सीमा विधि से बाधित है। इन तर्कों पर विचार करते हुए, मैंने अभिलेख पर उपलब्ध वादपत्र तथा अन्य सामग्रियों का पुनः सावधानीपूर्वक अवलोकन किया।"

41. निस्संदेह प्रारंभ में यह वाद स्वामित्व की घोषणा तथा उसके परिणामस्वरूप स्थायी निषेधाज्ञा के प्रतिकर हेतु था। सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 के प्रावधान के अनुसार, किसी भी घोषणा प्राप्त करने के लिए वाद उस तिथि से तीन वर्ष के भीतर दायर किया जाना चाहिए जब वाद करने का अधिकार प्रथम बार उत्पन्न होता है। उपर्युक्त विस्तृत चर्चा के अनुसार, वादी ने वाद संपतियों पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया है। अब वादी के विधिक उत्तराधिकारी कब्जा प्राप्त करने का वैकल्पिक प्रतिकर मांग रहे हैं। चूँकि वादी अपने कब्जे को सिद्ध करने में असफल रही, इसलिए वह कब्जा प्राप्त करने की भी अधिकारी है। कब्जा प्राप्त करने के अधिकार के लिए, सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 55 के प्रावधान के अनुसार, सीमा अवधि 12 वर्ष है, जो उस समय से प्रारंभ होती है जब प्रतिवादियों का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो जाता है। ...

माननीय सर्वोच्च न्यायालय के स्थापित सिद्धांत के अनुसार, जब वाद स्वामित्व के आधार पर कब्जा प्राप्त करने हेतु होता है, तो एक बार स्वामित्व सिद्ध हो जाने पर, जब तक प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जा सिद्ध नहीं करता, वादी को वाद से वंचित नहीं किया जा सकता। यहाँ वादी का दावा उसके पूर्वजों से प्राप्त स्वामित्व के आधार पर सफल हुआ है। ऐसी स्थिति में, जब तक प्रतिवादी यह प्रतिपादित और सिद्ध नहीं करते कि वे वादी के अधिकार के प्रतिकूल कब्जे में हैं, वादी को वाद से वंचित नहीं किया जा सकता। अतः अब यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि जब वादी वाद संपत्ति पर अपना अधिकार, स्वामित्व और हित स्थापित कर देता है और प्रतिवादी उसके कब्जे में हैं, तब तक जब तक प्रतिवादी यह सिद्ध न कर दें कि वे प्रतिकूल कब्जे के आधार पर उस संपत्ति के स्वामी बन गए हैं, वादी को वाद से वंचित

नहीं किया जा सकता और यह नहीं कहा जा सकता कि वाद सीमा विधि से बाधित है। स्वीकार्यतः, प्रतिवादियों ने कहीं भी यह प्रतिवाद नहीं किया है कि वे वादी के अधिकार के प्रतिकूल कब्जे में हैं। ऐसी परिस्थितियों में, यह न्यायालय विचारपूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि वाद प्रतिवादियों द्वारा कथित अनुसार सीमा विधि से बाधित नहीं है, बल्कि समय-सीमा के भीतर है और वादी मांगे गए प्रतिकर की अधिकारी है।"

(जोर दिया गया)

k. प्रथम अपीलीय न्यायालय के निर्णय का प्रभावी भाग इस प्रकार है:

"अपीलकर्ताओं/वादी के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा आदेश 41 नियम 1 एवं 2 सहपठित धारा 151 सीपीसी के अंतर्गत दायर अपील स्वीकार की जाती है।

सिविल न्यायाधीश एवं जेएमएफसी, हूविनहडगली के समक्ष वाद सं. 67/2011 में दिनांक 06.09.2014 को पारित निर्णय एवं डिक्री को निष्कर्षों में संशोधन करते हुए निरस्त किया जाता है।

वादी का वाद डिक्री किया जाता है।

वादी के विधिक उत्तराधिकारियों को वाद संपत्तियों का पूर्ण स्वामी घोषित किया जाता है तथा प्रतिवादियों को इस आदेश की तिथि से 60 दिनों के भीतर वाद संपत्तियों का कब्जा सौंपने का निर्देश दिया जाता है।"

l. यहाँ के अपीलकर्ता प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा पारित निर्णय एवं डिक्री से असंतुष्ट होकर सीपीसी की धारा 100 के अंतर्गत द्वितीय अपील दायर करते हुए उच्च न्यायालय के समक्ष गए।

m. उच्च न्यायालय ने यह पाया कि द्वितीय अपील में कोई महत्वपूर्ण विधि प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है और निम्नलिखित आधार पर अपील को खारिज कर दिया:

"वर्तमान अपीलकर्ताओं ने यह भी तर्क दिया है कि घोषणा एवं कब्जा प्राप्त करने हेतु वाद सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 के अंतर्गत

सीमा द्वारा बाधित है। चूँकि प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह ठहराया है कि वादी वाद संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी है, अतः वह कब्जा प्राप्त करने की अधिकारी है और यह मामला सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 के अंतर्गत नहीं आता। यह भी प्रतिवादियों का मामला नहीं है कि वे विधिक अवधि के दौरान वाद संपत्ति पर प्रतिकूल कब्जे में रहे हैं और उन्होंने प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया है। जब यह प्रतिवादियों का मामला नहीं है, तब सीमा अधिनियम का अनुच्छेद 65 लागू होगा और परिणामस्वरूप वादी का वाद सीमा से बाधित नहीं माना जा सकता। अतिरिक्त रूप से, जब वादी का वाद स्वामित्व पर आधारित है, तब सीमा का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता। इन परिस्थितियों में यह माना जाता है कि वर्तमान अपील में विचार हेतु अपीलकर्ताओं द्वारा कोई भी महत्वपूर्ण विधि प्रश्न प्रस्तुत नहीं किया गया है। अतः यह अपील गुणहीन होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है। तदनुसार, अपील खारिज की जाती है।"

4. उपर्युक्त परिस्थितियों में, अपीलकर्ता (मूल प्रतिवादी) वर्तमान अपील के साथ इस न्यायालय के समक्ष उपस्थित हैं।

<u>अपीलकर्ताओं की ओर से लिखित प्रस्तुतियाँ</u>

a. उच्च न्यायालय ने बिना किसी महत्वपूर्ण विधि प्रश्न का निर्धारण किए ही द्वितीय अपील को खारिज कर गंभीर त्रुटि की है। विचारण न्यायालय द्वारा वाद को इस आधार पर खारिज करना उचित था कि यहाँ के अपीलकर्ता (प्रतिवादी) वर्ष 1981-82 से वाद संपत्ति के कब्जे में हैं और कब्जा प्राप्त करने के प्रतिकर की मांग किए बिना दायर वाद खारिज किए जाने योग्य था।

b. वादी ने दिनांक 29.07.2011 को वर्तमान वाद स्वामित्व की घोषणा तथा स्थायी निषेधाज्ञा के प्रतिकर के लिए दायर किया। उल्लेखनीय है कि मूल रूप से दायर वाद में कब्जा प्राप्त करने का कोई प्रतिकर नहीं मांगा गया था। वाद इस आधार पर दायर किया गया था कि वादी के सहवंशी वाद संपतियों के

मूल स्वामी थे और वह शाखा उत्तराधिकारीहीन रह गई, अतः वाद संपत्ति वादी को प्राप्त हुई तथा यह भी कि वादी वाद संपत्तियों के कब्जे में है। विचारण न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी वर्ष 1981-1982 से निरंतर कब्जे में हैं और राजस्व अभिलेख भी वर्ष 1981-1982 से उनके नाम पर दर्ज हैं। विचारण न्यायालय के समक्ष वाद लंबित रहने की पूरी अवधि के दौरान वादी ने कब्जा प्राप्त करने के प्रतिकर हेतु वादपत्र में कोई संशोधन नहीं मांगा। अतः जैसा कि वाद प्रस्तुत किया गया था, वह मुख्यतः स्वामित्व की घोषणा तथा उसके परिणामस्वरूप निषेधाज्ञा के प्रतिकर हेतु था। प्रतिवादी-वादी ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष अपील दायर की और अपील लंबित रहने के दौरान वादपत्र में संशोधन कर कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर जोड़ने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया। उक्त संशोधन आवेदन प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा दिनांक 22.06.2018 को स्वीकृत किया गया। अतः संशोधन का प्रतिकर वर्ष 2018 में किया गया, जबकि याचिकाकर्ता-प्रतिवादी वर्ष 1981-1982 से ही कब्जे में थे। इस प्रकार वाद सीमा द्वारा बाधित था।

c. प्रतिवादी-वादी ने कारण-कार्रवाई के संबंध में यह कहा कि याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों ने राजस्व अभिलेखों में खाताबही (खाता) को अपने नाम पर परिवर्तित करवा लिया, जिससे कारण-कार्रवाई उत्पन्न हुआ। विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय दोनों का यह समवर्ती निष्कर्ष है कि वर्ष 1981-1982 से राजस्व अभिलेख याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के नाम पर दर्ज थे। विचारण न्यायालय ने अपने निर्णय के पृष्ठ 67 पर उल्लेख किया कि वर्ष 1981-1982 में नामांतरण याचिकाकर्ता-प्रतिवादियों के पक्ष में किया गया था। इस संबंध में विचारण न्यायालय का निष्कर्ष इस प्रकार है:

> *"सभी दस्तावेज, जैसे आर.ओ.आर एवं पट्टा पुस्तिका, यह दर्शाते हैं कि वर्ष 1981-82 में जुम्मानी मल्लव्वा ने प्रतिवादियों के नाम परिवर्तन हेतु सहमति दी थी और उसी समय से उनके नाम राजस्व अभिलेखों में अंकित हैं।"*

अतः कारण-कार्रवाई वर्ष 1981-1982 में ही उत्पन्न हो गया था और स्वामित्व की घोषणा (मुख्य प्रतिकर) हेतु वाद, सीमा अधिनियम की अनुसूची के अनुच्छेद 58 के अंतर्गत बाधित था।

5. उपर्युक्त परिस्थितियों में, अधिवक्ता ने निवेदन किया कि चूँकि उनकी अपील में पर्याप्त बल है, अतः उसे स्वीकार किया जाए तथा उच्च न्यायालय द्वारा पारित विवादित निर्णय को निरस्त किया जाए।

<u>प्रतिवादियों (मूल वादीगण) की ओर से प्रस्तुतियाँ</u>

a. याचिकाकर्ताओं ने यह विशेष अनुमति याचिका कर्नाटक उच्च न्यायालय, धारवाड़ सर्किट पीठ द्वारा आरएसए संख्या 100071/2019 में दिनांक 13-06-2019 को पारित अंतिम निर्णय के विरुद्ध दायर की है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ताओं की द्वितीय अपील खारिज कर दी गई थी।

b. यह कार्यवाही वाद संख्या ओ.एस. संख्या 67/2011 से उत्पन्न हुई है, जिसे मृत प्रतिवादी द्वारा घोषणा एवं निषेधाज्ञा के प्रतिकर हेतु दायर किया गया था। विचारण न्यायालय ने साक्ष्यों के मूल्यांकन के पश्चात वादी/प्रतिवादी को स्वामी पाया। तथापि, विचारण न्यायालय ने यह पाया कि वादी कब्जे में नहीं है और चूँकि उसने कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर नहीं मांगा था, अतः वाद पोषणीय नहीं था और इसलिए वाद को खारिज कर दिया गया।

c. वाद संपत्ति पर स्वामित्व की घोषणा संबंधी निष्कर्ष को प्रथम अपीलीय न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय में भी यथावत रखा गया है। अतः यह निष्कर्ष कि वादी वाद संपत्ति का स्वामी है, तथ्य का समवर्ती निष्कर्ष है।

d. चूँकि विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी को कब्जे में पाया था, इसलिए वादी/प्रतिवादी ने अपनी अपील लंबित रहने के दौरान वादपत्र में संशोधन कर कब्जा पुनर्प्राप्ति का प्रतिकर जोड़ा। अपीलीय न्यायालय ने अपील स्वीकार करते हुए वादी/प्रतिवादी को कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर प्रदान किया। कब्जा संबंधी डिक्री को उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ताओं की द्वितीय अपील खारिज करते हुए पुष्टि कर दी।

e. दिनांक 29-11-2019 को, इस माननीय न्यायालय ने इस विशेष अनुमति याचिका पर नोटिस जारी करते समय नोटिस को इस प्रश्न तक सीमित किया कि "क्या कब्जा प्राप्त करने हेतु वाद (जैसा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष संशोधित वादपत्र में है) सीमा अवधि के भीतर था।"

f. वादी ने यह कथन करते हुए अपना स्वामित्व स्थापित किया कि कलसम्मनवारा परिवार के चिन्मयप्पा और मल्लप्पा सगे भाई थे; यद्यपि

वे वाद संपत्तियों के संयुक्त स्वामी थे, तथापि भूमि चिन्मयप्पा के नाम पर दर्ज थी; चिन्मयप्पा के एक पुत्र गोनेप्पा थे, जिनकी बिना संतान के मृत्यु हो गई। वादी मल्लप्पा (जो छोटे भाई थे) की पोती है और इस प्रकार वह एकमात्र जीवित विधिक उत्तराधिकारी है।

g. वादी ने आगे यह भी कथन किया कि प्रतिवादी कलसम्मनवारा परिवार से संबंधित नहीं हैं, बल्कि वे जुमानी नामक अन्य परिवार से संबंधित हैं। जुमानी परिवार में एक गोनेप्पा था, जिसकी पत्नी मल्लम्मा थी; नामों की समानता का लाभ उठाकर प्रतिवादियों ने अधिकार अभिलेख (रिकॉर्ड ऑफ राइट्स) में अपने नाम दर्ज करवा लिए।

h. वादपत्र में विशेष कथन यह है कि वादी को वर्ष 2009 में अवैध नामांतरण की जानकारी हुई और इसके पश्चात उसने उस नामांतरण को चुनौती देने हेतु राजस्व कार्यवाही प्रारंभ की, जिसके दौरान प्रतिवादियों ने उसके स्वामित्व से इनकार किया और इसलिए उसने वाद दायर किया। प्रस्तुत कारण-कार्रवाई वर्ष 2010 का बताया गया है, जब प्रतिवादियों ने पहली बार वादी के स्वामित्व को अस्वीकार किया।

i. लिखित कथन में प्रतिवादियों ने यह प्रतिवाद किया कि चिन्मयप्पा का एक पुत्र गोनेप्पा था, जिसने जुमानी बसप्पा की पुत्री मल्लव्वा से विवाह किया था, और उक्त गोनेप्पा की पत्नी प्रतिवादी संख्या 1 के पति की बहन थी। आगे यह भी प्रतिवाद किया गया कि गोनेप्पा और मल्लव्वा की बिना संतान के मृत्यु हो गई, जिससे प्रतिवादी संख्या 1 का पति वर्ग-II का उत्तराधिकारी रहा और इस प्रकार प्रतिवादी संपत्ति के उत्तराधिकारी बने। यह भी प्रतिवाद किया गया कि गोनेप्पा की पत्नी मल्लव्वा ने म्यूटेशन संख्या 11/81-82 के अंतर्गत प्रतिवादी संख्या 2 के नाम पर खाता परिवर्तन के लिए सहमति दी थी और नामांतरण के पश्चात प्रतिवादी संख्या 1 संपत्ति के वैध कब्जे एवं उपभोग में आ गई। प्रतिवादियों ने प्रतिकूल कब्जे के संबंध में कोई प्रतिवाद नहीं उठाया। वादपत्र में कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर शामिल किए जाने के पश्चात, प्रतिवादियों ने लिखित कथन में संशोधन कर पैरा 14(क) जोड़ा कि वाद सीमा द्वारा बाधित है।

j. प्रथम अपीलीय न्यायालय ने यह अभिप्रेत किया कि प्रारंभ में वाद घोषणा के लिए था, जो सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 के अंतर्गत आता है, और

संशोधन के पश्चात वादी ने कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर मांगा, जो सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 65 के अंतर्गत आता है, जिसकी सीमा अवधि 12 वर्ष है, जो उस तिथि से प्रारंभ होती है जब प्रतिवादियों का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो जाता है। अतिरिक्त रूप से, अपीलीय न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि जब तक प्रतिवादी यह प्रतिवाद कर और सिद्ध नहीं करते कि वे प्रतिकूल कब्जे में हैं तथा प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामी बन गए हैं, तब तक वादी, जिसका स्वामित्व सिद्ध हो चुका है, को सीमा के आधार पर वाद से वंचित नहीं किया जा सकता।

k. *सीमा के प्रश्न के संबंध में प्रथम अपीलीय न्यायालय का उपर्युक्त निष्कर्ष उच्च न्यायालय द्वारा भी पुष्टि कर यथावत रखा गया है।*

l. *याचिकाकर्ता के वरिष्ठ अधिवक्ता का यह तर्क कि वर्तमान वाद सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 के अंतर्गत बाधित है, स्वीकार नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 58 घोषणा प्राप्त करने हेतु एक अवशिष्ट प्रावधान है। कब्जा प्राप्त करने के वाद पर केवल अनुच्छेद 65 लागू होता है। वर्तमान मामले में, इस माननीय न्यायालय द्वारा जारी नोटिस इस प्रश्न तक सीमित है कि क्या कब्जा प्राप्त करने के लिए संशोधित प्रतिकर सीमा द्वारा बाधित है।*

6. उपर्युक्त परिस्थितियों में, अधिवक्ता ने निवेदन किया कि इस अपील में कोई मेरिट न होने के कारण इसे खारिज किया जाए।

<u>विश्लेषण</u>

7. पक्षकारों की ओर से उपस्थित अधिवक्ताओं को सुनने तथा अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन करने के पश्चात, हमारे विचारार्थ केवल यह प्रश्न शेष रह जाता है कि क्या उच्च न्यायालय ने विवादित निर्णय एवं आदेश पारित करने में कोई त्रुटि की है।

8. हम इस न्यायालय द्वारा दिनांक 29.11.2019 को पारित आदेश का संज्ञान लेते हैं। उक्त आदेश इस प्रकार है:

"विलंब क्षम्य किया जाता है।

नोटिस जारी किया जाए ताकि इस प्रश्न पर विचार किया जा सके कि क्या कब्जा प्राप्त करने हेतु वाद (जैसा कि प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष संशोधित वादपत्र में है) सीमा अवधि के भीतर था।

यथास्थिति, जो आज की तिथि पर विद्यमान है, बनाए रखी जाए।

विचारण न्यायालय तथा प्रथम अपीलीय न्यायालय से अभिलेख मंगाए जाएँ।"

अतः, हमारे विचारार्थ एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या वादियों द्वारा दायर मूल वाद, प्रथम अपील के चरण में वादपत्र में संशोधन कर वाद संपत्ति का कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर जोड़ने के पश्चात भी, सीमा द्वारा बाधित कहा जा सकता है। अर्थात्, क्या यह वाद सीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 58 द्वारा नियंत्रित होगा या अनुच्छेद 65 द्वारा?

9. यह विवादित नहीं है कि विचारण न्यायालय ने वाद को खारिज करते हुए भी वादियों को वाद अनुसूची संपत्तियों का पूर्ण स्वामी माना था। यह भी विवादित नहीं है कि वादी वाद से वंचित रह गई, क्योंकि यहाँ के अपीलकर्ता (मूल प्रतिवादी) वाद अनुसूची संपत्तियों के वैध कब्जे एवं उपभोग में पाए गए थे और वादियों ने वादपत्र में अनुसूचित संपत्तियों के कब्जा प्राप्त करने का प्रतिकर नहीं मांगा था। अतः जहाँ तक संपत्ति के स्वामित्व का प्रश्न है, वादी यह स्थापित करने में सफल रही कि वह वाद अनुसूची संपत्तियों की पूर्ण स्वामिनी है। मूल वादियों के विधिक उत्तराधिकारियों द्वारा दायर प्रथम अपील में वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी गई और प्रतिवादियों से कब्जा पुनर्प्राप्ति का प्रतिकर जोड़ा गया। यह सत्य है कि स्वामित्व एवं अधिकार के निष्कर्षों के संबंध में प्रतिवादियों ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष प्रतिवाद-पत्र दायर किए थे, जिन पर विचार कर उन्हें खारिज कर दिया गया। तथापि, जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस न्यायालय द्वारा नोटिस केवल सीमा अवधि के प्रश्न पर विचार करने हेतु जारी किया गया था।

10. उपर्युक्त के दृष्टिगत, हम वर्तमान वाद में सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 अथवा अनुच्छेद 65 की लागू होने की विधिक स्थिति पर विचार करेंगे।

11. हमें सर्वप्रथम सीमा अधिनियम की धारा 3(1) एवं 27 तथा अनुच्छेद 58, 65 और 113 का अवलोकन करना आवश्यक है।

12. उक्त अधिनियम की धारा 3(1) इस प्रकार है:

"3. परिसीमा का प्रतिबंध–(1) धारा 4 से 24 (दोनों सहित) के प्रावधानों के अधीन, प्रत्येक वाद, अपील या आवेदन जो निर्धारित अवधि के पश्चात दायर किया गया है, उसे खारिज किया जाएगा, भले ही परिसीमा का प्रतिरक्षा के रूप में आग्रह न किया गया हो।"

13. उक्त धारा का मात्र अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि कोई वाद, अपील या आवेदन सीमा अधिनियम में निर्दिष्ट निर्धारित अवधि से परे दायर किया गया है, तो उसे खारिज किया जाना अपेक्षित है, भले ही सीमा का प्रतिवाद बचाव के रूप में नहीं उठाया गया हो।

14. उक्त अधिनियम की धारा 27 इस प्रकार है:

> *"27. संपत्ति के अधिकार का उन्मूलन.- किसी व्यक्ति के लिए किसी संपत्ति के कब्जे के लिए वाद संस्थापित करने हेतु निर्धारित अवधि के समाप्त हो जाने पर, उस संपत्ति पर उसका अधिकार समाप्त हो जाएगा।"*

15. अर्थात्, जहाँ तक कब्जा प्राप्त करने के वाद का संबंध है, उसे सीमा अधिनियम में निर्दिष्ट अवधि के भीतर दायर किया जाना चाहिए और यदि वह सीमा अवधि के पश्चात दायर किया जाता है, तो ऐसी संपत्ति पर वादी का अधिकार समाप्त हो जाएगा।

16. परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 58 इस प्रकार है:

"मुकदमे का विवरण	*परिसीमा काल*	*वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होती है*
किसी अन्य घोषणा प्राप्त करने हेतु	*तीन साल*	*जब वाद करने का अधिकार प्रथम बार उत्पन्न होता है"*

उक्त अनुच्छेद के प्रावधान का सरसरी अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि अनुच्छेद 56 एवं 57 में वर्णित घोषणा संबंधी वादों के अतिरिक्त, कोई भी अन्य घोषणा संबंधी वाद उस तिथि से तीन वर्ष के भीतर दायर किया जाना चाहिए जब वाद करने का अधिकार प्रथम बार उत्पन्न होता है।

17. परिसीमा अधिनियम का अनुच्छेद 65 इस प्रकार है:

"मुकदमे का विवरण	*परिसीमा काल*	*वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होती है*
अचल संपत्ति या उसमें किसी हित के कब्जे हेतु, जो स्वामित्व पर आधारित हो	*बारह साल*	*जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रतिकूल हो जाता है"*

उक्त अनुच्छेद के साधारण पाठ से यह स्पष्ट होता है कि स्वामित्व के आधार पर कब्जा पुनर्प्राप्ति हेतु दायर वाद, उस तिथि से 12 वर्ष की अवधि के भीतर दायर किया जाना चाहिए जब प्रतिवादी का कब्जा संबंधित वादी के प्रति प्रतिकूल हो जाता है।

18. सीमा अधिनियम, 1963 का अनुच्छेद 65, सीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 142 के समकक्ष है, जिसमें यह कहा गया था कि जो वादी अपना मामला स्वामित्व के आधार पर प्रस्तुत करता है, उसे न केवल स्वामित्व, बल्कि वाद की तिथि से 12 वर्ष के भीतर कब्जा भी सिद्ध करना होता है। उक्त प्रावधान में सीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 65 के लागू होने के पश्चात महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। सीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 142 और सीमा अधिनियम, 1963 के अनुच्छेद 65 के बीच मूलभूत अंतर यह है कि 1908 के अधिनियम के अनुच्छेद 142 के अनुसार वादी को न केवल स्वामित्व बल्कि वाद की तिथि से 12 वर्ष के भीतर कब्जा भी सिद्ध करना होता था, जबकि 1963 के अधिनियम के अनुच्छेद 65 के अनुसार स्वामित्व के आधार पर कब्जा प्राप्त करने का वाद उस समय से 12 वर्ष के भीतर दायर किया जाना चाहिए जब कब्जा संबंधित वादी के प्रति प्रतिकूल हो जाता है।

19. अनुच्छेद 113 इस प्रकार है:

"मुकदमे का विवरण	*परिसीमा काल*	*वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होती है*
ऐसा कोई भी वाद जिसके लिए इस अनुसूची में अन्यत्र कोई सीमा अवधि निर्धारित नहीं की गई है।	*तीन साल*	*जब मुकदमा करने का अधिकार प्राप्त होता है।"*

अर्थात्, यदि सीमा अधिनियम, 1963 में अन्यत्र कोई निर्धारित सीमा अवधि प्रदान नहीं की गई है, तो उक्त अधिनियम के अनुच्छेद 113 के अनुसार वाद उस तिथि से 3 वर्ष की अवधि के भीतर दायर किया जाना चाहिए जब वाद करने का अधिकार उत्पन्न होता है।

20. सीमा अधिनियम, 1963 की उपर्युक्त धाराओं एवं अनुच्छेदों के संयुक्त पठन से न्यायालय को यह निर्धारित करना है कि वर्तमान वाद में मांगे गए प्रतिकर अनुच्छेद 58 के दायरे में आते हैं या सीमा अधिनियम, 1963 के किसी अन्य अनुच्छेद के अंतर्गत।

21. अनुच्छेद 58, सीमा अधिनियम, 1963 के भाग-III के अंतर्गत आता है और यह घोषणा संबंधी वादों से संबंधित है।

22. निम्नलिखित घटनाक्रम महत्वपूर्ण है:

i. मूल वाद वर्ष 2011 में दायर किया गया।

ii. वाद दिनांक 6.09.2014 को खारिज कर दिया गया।

iii. प्रथम अपील 30.10.2014 को दायर की गई।

iv. वादपत्र में संशोधन हेतु आवेदन भी प्रथम अपील के साथ 30.10.2014 को दायर किया गया।

v. वादपत्र में संशोधन हेतु, कब्जा पुनर्प्राप्ति के प्रतिकर को जोड़ने के उद्देश्य से दायर आवेदन को दिनांक 22.06.2018 के आदेश द्वारा स्वीकार किया गया।

vi. नियमित अपील दिनांक 27.10.2018 को स्वीकार कर ली गई।

प्रथम अपील के चरण पर वादपत्र में संशोधन

23. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि प्रक्रिया संबंधी नियम न्याय के प्रशासन में सहायक मात्र होते हैं। किसी पक्ष को केवल किसी त्रुटि, लापरवाही, असावधानी या प्रक्रिया के नियमों के उल्लंघन के कारण न्यायोचित प्रतिकर से वंचित नहीं किया जा सकता। न्यायालय सामान्यतः पक्षकार को अपने अभिवेदन में संशोधन करने की अनुमति देता है, जब तक कि यह संतुष्ट न हो जाए कि आवेदन करने वाला पक्ष दुर्भावना से कार्य कर रहा था या उसकी भूल के कारण प्रतिपक्ष को ऐसी क्षति हुई है जिसकी भरपाई व्ययादेश द्वारा नहीं की जा सकती। (***महिला रामकली देवी बनाम नंदराम (मृत) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से*** : (2015) 13 एससीसी 132)

24. ***जय जय राम मनोहर लाल बनाम नेशनल बिल्डिंग मटेरियल सप्लाई, गुड़गांव*** (1969) 1 एससीसी 869 में प्रतिवेदित, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अभिवेदन में संशोधन की अनुमति देने की शक्ति न्याय की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु है और यह किसी संकीर्ण या तकनीकी सीमाओं द्वारा नियंत्रित नहीं होती।

मल्लव्वा और अन्य बनाम

कलसमनवरा कलम्मा (मृत) - विधिक उत्तराधिकारियों के माध्यम से, और अन्य

25. ***पंडित ईश्वरदास बनाम मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य*** (1979) 4 एससीसी 163 में प्रतिवेदित, इस न्यायालय ने यह अवलोकन किया:

"4. हम प्रस्तुत किए गए किसी भी तर्क में कोई सार नहीं देखते हैं। अधिवक्ता ऐसा प्रतीत होता है कि इस धारणा के आधार पर तर्क दे रहे थे कि अपीलीय स्तर पर कोई नया अभिवेदन तब तक अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक उस अभिवेदन का निर्णय करने के लिए आवश्यक समस्त सामग्री पहले से न्यायालय के समक्ष उपलब्ध न हो। इस धारणा का कोई आधार नहीं है।

5. अपीलीय न्यायालय द्वारा अभिवेदन में संशोधन की अनुमति देने में कोई बाधा या निषेध नहीं है, जिससे किसी पक्ष को नया अभिवेदन उठाने का अवसर मिल सके। आवश्यक केवल यह है कि अपीलीय न्यायालय उन सुविख्यात सिद्धांतों का पालन करे जिनके अधीन सामान्यतः अभिवेदन में संशोधन की अनुमति दी जाती है। स्वाभाविक रूप से, संशोधन की अनुमति देने से पूर्व जिन परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा, उनमें से एक यह है कि ऐसे संशोधन हेतु आवेदन करने में विलंब क्यों हुआ तथा यदि वह अपीलीय स्तर पर किया गया है, तो यह क्यों विचारण न्यायालय में नहीं किया गया। यदि वह आवश्यक सामग्री, जिसके आधार पर संशोधन से उत्पन्न अभिवेदन का निर्णय किया जाना है, पहले से उपलब्ध है, तो संशोधन को अधिक सहजता से अनुमति दी जा सकती है। तथापि, केवल इस आधार पर कि आवश्यक सामग्री न्यायालय के समक्ष पहले से उपलब्ध नहीं है, अपीलीय स्तर पर संशोधन की अनुमति देने पर कोई प्रतिबंध नहीं है।"

26. संपत कुमार बनाम अय्याकन्नु एवं अन्य, (2002) 7 एससीसी 559 में यह अभिनिर्धारित किया गया है:

"एक बार संशोधन सम्मिलित कर लिया जाने पर वह वाद की तिथि से प्रभावी माना जाता है। तथापि, अभिवेदन में संशोधन के संदर्भ में 'रिलेशन बैक ' का सिद्धांत सर्वत्र लागू होने वाला नहीं है और उपयुक्त मामलों में न्यायालय, संशोधन की अनुमति देते समय यह निर्देश देने के लिए सक्षम है कि उसके द्वारा अनुमत संशोधन वाद की तिथि से प्रभावी नहीं होगा और

<u>जिस सीमा तक अनुमति दी गई है, उसे उस तिथि से न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत माना जाएगा जिस दिन संशोधन हेतु आवेदन दायर किया गया था।"</u>

(जोर दिया गया)

27. सिद्धलिंगम्मा एवं अन्य बनाम ममता शेनॉय, (2001) 8 एससीसी 561 में इस न्यायालय ने निम्नलिखित कहा:

"... 'रिलेशन बैक' के सिद्धांत के अनुसार, जो सामान्यतः अभिवेदन में संशोधन को नियंत्रित करता है, जब तक कि न्यायालय किसी विशेष मामले में इस सिद्धांत के प्रयोग को अपवर्जित न करे, संशोधित बेदखली याचिका को मूल रूप से उसी रूप में दायर किया गया माना जाएगा और साक्ष्य का मूल्यांकन संशोधित याचिका में किए गए कथनों के प्रकाश में किया जाएगा। उच्च न्यायालय ने यद्यपि विचारण न्यायालय के आदेश को निरस्त कर दिया, तथापि उच्च न्यायालय के आदेश की रूपरेखा से, विशेषकर उन अंशों से जिन्हें हमने उच्च न्यायालय के आदेश से उद्धृत कर इस निर्णय के पूर्व भाग में पुनः प्रस्तुत किया है, यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय के माननीय एकल न्यायाधीश अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री के आधार पर मकान-मालकिन की आवश्यकता की वास्तविकता पर गंभीर संदेह नहीं कर रहे थे, बल्कि वे मूल रूप से दायर बेदखली याचिका की सामग्री से संतुष्ट नहीं थे और मकान-मालकिन द्वारा अपनी बहन के पुत्रों एवं पोते-पोतियों को अपने ही रूप में प्रस्तुत करने के अत्यधिक उत्साही प्रयास से अप्रसन्न थे। ..."

(जोर दिया गया)

28. इस न्यायालय ने ***रेवाजीतु बिल्डर्स एंड डेवलपर्स बनाम नारायणस्वामी एंड सन्स एवं अन्य,*** (2009) 10 एससीसी 84 में, संशोधन आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार करते समय न्यायालय द्वारा ध्यान में रखे जाने वाले कुछ मूलभूत सिद्धांत निर्धारित किए हैं। उक्त निर्णय के पैरा 63 इस प्रकार है:

"63. <u>अंग्रेजी एवं भारतीय मामलों का समालोचनात्मक विश्लेषण करने पर कुछ मूलभूत सिद्धांत सामने आते हैं, जिन्हें संशोधन के आवेदन को स्वीकार या अस्वीकार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए:</u>

> *(1) क्या प्रस्तावित संशोधन मामले के उचित एवं प्रभावी निर्णय के लिए अनिवार्य है;*
>
> *(2) क्या संशोधन हेतु आवेदन सद्भावना (बोना फाइड) से किया गया है या दुर्भावना (माला फाइड) से;*
>
> *(3) संशोधन से प्रतिपक्ष को ऐसी हानि नहीं होनी चाहिए जिसकी पूर्ति धन द्वारा पर्याप्त रूप से न की जा सके;*
>
> *(4) संशोधन से इनकार करने पर वास्तव में अन्याय होगा या बहुविध वाद उत्पन्न होंगे;*
>
> *(5) क्या प्रस्तावित संशोधन मामले की प्रकृति एवं स्वरूप में मौलिक या बुनियादी परिवर्तन करता है; तथा*
>
> *(6) सामान्यतः, न्यायालय को संशोधन अस्वीकार करना चाहिए यदि संशोधन के आधार पर दायर किया जाने वाला नया वाद आवेदन की तिथि पर ही सीमा द्वारा बाधित हो।"*
>
> (जोर दिया गया)

29. अतः उपर्युक्त निर्णय में प्रतिपादित सिद्धांत यह है कि यदि संशोधन के आधार पर दायर किया जाने वाला नया वाद आवेदन की तिथि पर ही सीमा द्वारा बाधित हो, तो न्यायालय को संशोधन अस्वीकार कर देना चाहिए।

30. यहाँ के अपीलकर्ताओं का तर्क है कि वाद सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 द्वारा नियंत्रित होगा और समय-सीमा से बाधित होने के कारण खारिज किए जाने योग्य है, जबकि प्रतिवादियों (मूल वादियों) का तर्क है कि वाद सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 65 द्वारा नियंत्रित है और जिस तिथि को प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वादपत्र में संशोधन की अनुमति दी, उस समय भी वाद सीमा के भीतर था।

31. यह विधि का स्थापित सिद्धांत है कि जब किसी वाद में अनेक प्रतिकर मांगे जाते हैं, तो सीमा अवधि मुख्य प्रतिकर के आधार पर निर्धारित होती है और आनुषंगिक सहायक प्रतिकर के लिए सीमा को नजरअंदाज किया जाता है। यहाँ के अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता का तर्क विधि में टिकाऊ नहीं है, क्योंकि यह इस धारणा पर आधारित है मानो पूर्ववर्ती सीमा अधिनियम का अनुच्छेद 142 अभी भी लागू हो, जिसमें वादी को स्वामित्व के आधार पर

न केवल स्वामित्व बल्कि वाद की तिथि से बारह वर्ष के भीतर कब्जा भी सिद्ध करना होता था। उक्त विधिक प्रावधान, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, सीमा अधिनियम के अंतर्गत महत्वपूर्ण परिवर्तन से गुजर चुका है। अनुच्छेद 65 इस प्रकार है:

	"मुकदमे का विवरण	*परिसीमा काल*	*वह समय जिससे अवधि प्रारंभ होती है*
65.	*अचल संपत्ति या उसमें किसी हित के कब्जे के लिए, जो स्वामित्व पर आधारित हो*	*बारह साल*	*जब प्रतिवादी का कब्जा वादी के प्रति प्रतिकूल हो जाता है।"*

अतः यह स्पष्ट है कि जब वाद स्वामित्व के आधार पर कब्जा प्राप्त करने के लिए है, तो एक बार स्वामित्व प्रासंगिक अभिलेखों एवं अन्य साक्ष्यों के आधार पर सिद्ध हो जाने पर, जब तक प्रतिवादी प्रतिकूल कब्जा निर्धारित अवधि के लिए सिद्ध नहीं करता, वादी को वाद से वंचित नहीं किया जा सकता। [देखें: ***इंदिरा बनाम अरुमुगम एवं अन्य*** (1998) 1 एससीसी 614]

32. सी. मोहम्मद यूनुस बनाम सैयद उन्निस्सा, एआईआर 1961 एससी 808 में यह प्रतिपादित किया गया है कि घोषणा के साथ किसी अतिरिक्त प्रतिकर वाले वाद में सीमा उसी अनुच्छेद द्वारा नियंत्रित होगी जो उस अतिरिक्त प्रतिकर से संबंधित वाद पर लागू होता है। वास्तव में, अचल संपत्ति के स्वामित्व की घोषणा हेतु वाद तब तक बाधित नहीं माना जाएगा जब तक उस संपत्ति पर अधिकार अस्तित्व में बना रहता है। जब तक ऐसा अधिकार विद्यमान रहता है, घोषणा का प्रतिकर एक सतत अधिकार माना जाएगा और ऐसे वाद पर कोई सीमा लागू नहीं होगी। सिद्धांत यह है कि किसी अधिकार की घोषणा हेतु वाद को तब तक सीमा द्वारा बाधित नहीं माना जा सकता जब तक संपत्ति का अधिकार विद्यमान है।

33. इस न्यायालय ने ***केरल राज्य एवं अन्य बनाम जोसेफ एवं अन्य*** 2023 एससीसी ऑनलाइन एससी 961 में निम्नलिखित कहा है:

> ***"35.*** *किसी संपत्ति पर दीर्घकाल तक मात्र कब्जा होना अपने आप में प्रतिकूल कब्जे का अधिकार प्रदान नहीं करता;*

(क) गया प्रसाद दीक्षित बनाम डॉ. निर्मल चंदर (दो-न्यायाधीश पीठ) (1984) 2 एससीसी 286 में इस न्यायालय ने अवलोकन किया-

> *"1... यह केवल इतना पर्याप्त नहीं है कि लाइसेंस समाप्त होने के पश्चात अनधिकृत कब्जा हो, जिससे लाइसेंसधारी प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व का दावा कर सके, बल्कि उसके द्वारा कोई स्पष्ट (ओवर्ट) कार्य होना चाहिए जिससे यह प्रदर्शित हो कि वह प्रतिकूल स्वामित्व का दावा कर रहा है। यह संभव है कि लाइसेंसदाता, लाइसेंस समाप्त होने के बाद परिसर का कब्जा वापस लेने के लिए कोई कार्यवाही न करे, किन्तु इससे मात्र लाइसेंसधारी को प्रतिकूल कब्जे के आधार पर स्वामित्व का दावा करने का अधिकार नहीं मिल जाता। लाइसेंसधारी द्वारा ऐसा कोई स्पष्ट कार्य होना चाहिए जो शत्रुतापूर्ण स्वामित्व के दावे को दर्शाता हो। मात्र 12 वर्ष से अधिक अवधि तक अनधिकृत कब्जे का निरंतर बना रहना पर्याप्त नहीं है।"*
>
> *xxx xxx xxx*

***47.** उत्तराखंड राज्य बनाम मंदिर श्री लक्ष्मण सिद्ध महाराज (2017) 9 एससीसी 579 (दो-न्यायाधीश पीठ) के मामले में भी यह कहा गया है:*

> *"... अधीनस्थ न्यायालयों को यह भी ध्यान रखना चाहिए था कि न्यायालय केवल वही प्रतिकर प्रदान कर सकते हैं जो वादी द्वारा वादपत्र में मांगा गया हो और ऐसा प्रतिकर केवल अभिवेदन के आधार पर ही दिया जा सकता है, उससे परे नहीं। दूसरे शब्दों में, किसी भी प्रतिकर को प्रदान करने हेतु न्यायालय अभिवेदन की सीमा से बाहर नहीं जा सकते..."*

***48.** मंदिर श्री लक्ष्मण सिद्ध महाराज (उपर्युक्त) के निर्णय पर धर्मपाल (मृत) बनाम पंजाब वक्फ बोर्ड (2018) 11 एससीसी 449 (दो-न्यायाधीश पीठ) में भी इसी सिद्धांत पर निर्भर किया गया।*

***49.** स्वतंत्र स्वामित्व और प्रतिकूल कब्जे का एक साथ दावा करना परस्पर विरोधी अभिवेदन होते हैं। अन्नासाहेब बापूसाहेब पाटिल बनाम बलवंत (1995)*

2 एससीसी 543 (दो-न्यायाधीश पीठ) के मामले में इस सिद्धांत को इस प्रकार स्पष्ट किया गया:

> *"15. जहाँ कब्जा विधिसम्मत स्वामित्व से संबंधित हो, उसे प्रतिकूल नहीं माना जाएगा। इसका कारण यह है कि जिसका कब्जा विधिसम्मत स्वामित्व से जुड़ा है, उसे यह कहने की अनुमति नहीं दी जा सकती कि उसका कब्जा किसी अन्य के स्वामित्व के विरुद्ध शत्रुतापूर्ण था। जो व्यक्ति किसी अन्य के behalf पर कब्जा रखता है, वह मात्र उस अन्य के स्वामित्व से इनकार करके अपने कब्जे को प्रतिकूल नहीं बना सकता ताकि वह सीमा अधिनियम का लाभ प्राप्त कर सके। अतः जो व्यक्ति विधिसम्मत स्वामित्व के साथ कब्जे में प्रवेश करता है, वह यह दिखाकर कि उसके पास कोई स्वामित्व नहीं था, किसी अन्य के स्वामित्व को समाप्त नहीं कर सकता।"*

50. *इस सिद्धांत को मोहन लाल बनाम मिर्जा अब्दुल गफ्फार (1996) 1 एससीसी 639 (दो-न्यायाधीश पीठ) के मामले में भी अनुमोदित किया गया:*

> *"4. जहाँ तक प्रथम अभिवेदन का संबंध है, वह दूसरे अभिवेदन के साथ असंगत है। जब वह समझौते के तहत कब्जे में आया, तो उसे उस आधार पर अपने अधिकार का त्याग करना होगा और यह अभिवेदन तथा प्रमाणित करना होगा कि उसने अपने स्वतंत्र शत्रुतापूर्ण प्रतिकूल कब्जे का दावा अंतरणकर्ता या उसके उत्तराधिकारी के ज्ञान में किया तथा उन्होंने पूरे 12 वर्षों की अवधि तक उसके अवैध कब्जे को स्वीकार किया, अर्थात् 'बिना बल प्रयोग के, बिना चोरी-छिपे (खुले तौर पर), और बिना मालिक की अनुमति के' (nec vi, nec clam, nec precario) के सिद्धांत के अनुसार परिपक्व स्वामित्व अवधि पूर्ण होने तक। चूँकि अपीलकर्ता का दावा धारा 53-ए पर आधारित है, इससे यह स्वतः स्पष्ट है कि वह निहित रूप से स्वीकार करता है कि वह समझौते के तहत विधिसम्मत रूप से भूमि के कब्जे में आया और वाद की तिथि तक उसी में बना रहा। अतः अपीलकर्ता के लिए प्रतिकूल कब्जे का अभिवेदन उपलब्ध नहीं है।"*

> ***51.*** *न्यायालय ने उत्तम चंद (उपर्युक्त) के मामले में भी प्रतिकूल कब्जे के इस सिद्धांत को पुनः दोहराया है।*
>
> ***52.*** *प्रमाण का भार उस व्यक्ति पर होता है जो प्रतिकूल कब्जे का दावा करता है।*
>
> ***53.*** *इस न्यायालय ने पी.टी. मुनिचिक्कन्ना रेड्डी बनाम रेवम्मा (2007) 6 एससीसी 59 (दो-न्यायाधीश पीठ) में यह कहा कि प्रारंभ में भूमि-स्वामी पर अपने स्वामित्व तथा अधिकार को सिद्ध करने का भार होता है। इसके पश्चात यह भार दूसरे पक्ष पर स्थानांतरित हो जाता है कि वह प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अपने स्वामित्व को सिद्ध करे। यह अवलोकित किया गया:–*
>
>> *"34. इस संबंध में विधि में परिवर्तन हुआ है। 1908 के सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 142 एवं 144 के अनुसार, वादी पर यह भार था कि वह वाद दायर करने की तिथि से 12 वर्षों के भीतर अपने स्वामित्व तथा कब्जे को सिद्ध करे, जबकि 1963 के सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 64 एवं 65 के अनुसार, प्रमाण के भार के संबंध में विधिक स्थिति में पूर्ण परिवर्तन हो गया है : एक बार जब कोई पक्ष अपना स्वामित्व सिद्ध कर देता है, तब प्रमाण का भार दूसरे पक्ष पर आ जाता है कि वह प्रतिकूल कब्जे के आधार पर अपने स्वामित्व का दावा सिद्ध करे…।"*
>
> ***54.*** *न्यायालय ने इस सिद्धांत को जनता दल पार्टी बनाम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (2014) 16 एससीसी 731 (दो-न्यायाधीश पीठ) में भी पुनः दोहराया:*
>
>> *"… यह सिद्ध करने का समस्त भार कि कब्जा वादी के विरुद्ध प्रतिकूल है, प्रतिवादी पर होता है…"*

34. इस न्यायालय का ***खत्री होटल्स प्राइवेट लिमिटेड एवं अन्य बनाम भारत संघ एवं अन्य*** (2011) 9 एससीसी 126 में दिया गया निर्णय, जिस पर अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने भरोसा किया है, वर्तमान मामले में सहायक नहीं है। उक्त मामले में न्यायालय केवल सीमा अधिनियम के अनुच्छेद 58 से संबंधित था। न्यायालय ने यह उल्लेख किया कि अनुच्छेद 58 को अधिनियमित करते समय विधायिका ने जानबूझकर सीमा अधिनियम, 1908 के अनुच्छेद 120 की भाषा से भिन्नता रखी है। न्यायालय ने यह भी नोट किया

कि “sue” और “accrued” शब्दों के बीच “first” शब्द का प्रयोग किया गया है। न्यायालय ने कहा कि इसका अर्थ यह है कि यदि कोई वाद अनेक कारण-ए-कार्य पर आधारित है, तो सीमा अवधि उस तिथि से प्रारंभ होगी जब वाद दायर करने का अधिकार पहली बार उत्पन्न हुआ। दूसरे शब्दों में, न्यायालय ने यह कहा कि अधिकार का क्रमिक उल्लंघन कोई नया कारण-ए-कार्य उत्पन्न नहीं करेगा और यदि वाद उस तिथि से गणना की गई सीमा अवधि के बाहर दायर किया गया हो जब वाद दायर करने का अधिकार पहली बार उत्पन्न हुआ था, तो वह वाद निरस्त किया जाएगा।

35. ***राजपाल सिंह बनाम सरोज (मृत) उनके विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य*** (2022) 15 एससीसी 260 में दिया गया निर्णय, जिस पर अपीलकर्ताओं की ओर से उपस्थित अधिवक्ता ने भरोसा किया है, वह भी इस मामले में सहायक नहीं है। उक्त मामले में इस न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया:

“14. मूल वादी (अब उसके उत्तराधिकारियों द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया) की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि वाद में कब्जा प्राप्ति का प्रतिकर भी मांगा गया था और इसलिए वाद 12 वर्षों की अवधि के भीतर दायर किया गया था तथा सीमा अवधि के भीतर है–यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। कब्जा प्राप्ति का प्रतिकर केवल परिणामस्वरूप प्रतिकर है और मुख्य प्रतिकर 19-4-1996 की बिक्री विलेख के निरस्तीकरण का था, अतः सीमा अवधि का निर्धारण मुख्य प्रतिकर के संदर्भ में किया जाना चाहिए, न कि परिणामस्वरूप प्रतिकर के संदर्भ में। जब एक समग्र वाद बिक्री विलेख के निरस्तीकरण तथा कब्जा प्राप्ति दोनों के लिए दायर किया जाता है, तो सीमा अवधि का निर्धारण बिक्री विलेख के निरस्तीकरण के मुख्य प्रतिकर के आधार पर किया जाएगा, जो कि उस बिक्री विलेख के ज्ञान की तिथि से तीन वर्ष है। अतः मूल वादी द्वारा बिक्री विलेख के निरस्तीकरण हेतु दायर वाद मुख्य प्रतिकर का वाद है और स्पष्ट रूप से सीमा अवधि से बाधित था। इसलिए, माननीय विचारण न्यायालय को वाद को सीमा से बाधित होने के आधार पर खारिज करना चाहिए था। इस प्रकार, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को निरस्त कर वाद को खारिज करना उचित और सही था। उच्च न्यायालय ने प्रथम अपीलीय न्यायालय के सुविचारित एवं विस्तृत निर्णय और आदेश को निरस्त कर तथा विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री को पुनर्स्थापित कर गंभीर त्रुटि की है।”

36. इस प्रकार, यह स्पष्ट होता है कि दो प्रकार के प्रतिकर मांगे गए थे–एक बिक्री विलेख के निरस्तीकरण हेतु और दूसरा कब्जा प्राप्ति हेतु। न्यायालय ने कब्जा प्राप्ति के प्रतिकर को परिणामस्वरूप प्रतिकर माना तथा बिक्री विलेख के निरस्तीकरण को मुख्य प्रतिकर माना।

37. उपर्युक्त परिस्थितियों में न्यायालय ने यह माना कि यदि बिक्री विलेख के निरस्तीकरण तथा कब्जा प्राप्ति दोनों के लिए एक समग्र वाद दायर किया जाता है, तो सीमा अवधि का निर्धारण बिक्री विलेख के निरस्तीकरण के मुख्य प्रतिकर के आधार पर किया जाएगा, जो कि उस बिक्री विलेख के ज्ञान की तिथि से तीन वर्ष होगी।

38. ***राजपाल सिंह*** (उपर्युक्त) में प्रतिपादित सिद्धांत वर्तमान मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों पर लागू नहीं किया जा सकता। इसका कारण सरल है। सामान्यतः जब बिक्री विलेख के निरस्तीकरण और कब्जा प्राप्ति हेतु वाद दायर किया जाता है, तो यह संकेत करता है कि वादी का स्वामित्व पहले ही समाप्त हो चुका है। वादपत्र में उल्लिखित आधारों पर बिक्री विलेख को निरस्त कराने का प्रयास करते हुए वादी अपने स्वामित्व को पुनः प्राप्त करने तथा कब्जा पुनः प्राप्त करने का प्रयास करता है। ऐसी परिस्थितियों में सीमा अवधि तीन वर्ष होगी, न कि बारह वर्ष।

39. उपर्युक्त चर्चा के आलोक में, यह अपील असफल होती है और इसे खारिज किया जाता है।

मामले का परिणाम: अपील खारिज।

†हेडनोट्स तैयारकर्ता: अंकित ज्ञान

*यह अनुवाद मो. नसीम अख्तर पैनल अनुवादक (झारखंड उच्च न्यायालय, रांची) द्वारा किया गया।